जैनदर्शन में सर्वज्ञत्व : एक विश्लेषण

(डॉ. श्री धर्मचन्द्र जैन)

भारतीय दर्शनों में दो ऐसे दर्शन, मीमांसा और चार्वाक, विशेष हैं, जो 'सर्वज्ञत्व' को स्वीकार नहीं करते किन्तु न्याय-वैशेषिक, सांख्य, योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन दर्शन 'सर्वज्ञ' एवं सर्वज्ञत्व में पूर्ण श्रद्धा रखते हैं । ये सभी इस विषय में अपना-अपना दृष्टिकोण रखते हैं किन्तु प्रश्न उठता है कि कोई सर्वज्ञ था या नहीं ? कोई सर्वज्ञ हो सकता है अथवा नहीं ? यहां इसी को विभिन्न दर्शनों के परिप्रेक्ष्य में रखते हुए जैन दृष्टि से अध्ययन करना ही प्रस्तुत अनुबन्ध का विवेच्य विषय है ।

'सर्वज्ञ' शब्द का अर्थ :

सर्वज्ञ का अर्थ है - सबको जानने वाला - **सर्वं जानातीति सर्वज्ञः** । सर्वज्ञ का 'सर्व' शब्द ही यहां त्रिकालवर्ती समस्त द्रव्यों एवं उनके समस्त पर्यायों को दर्शाता है अर्थात् उनको एक साथ एक ही समय में साक्षात्कार करने वाला व्यक्ति विशेष ही सर्वज्ञ है ।

कुछ विद्वान् अनेक विषयों के ज्ञाता को सर्वज्ञ बतलाते हैं । कुछ एक मानते हैं कि जो सब शब्दों का ज्ञान रखता है वही सर्वज्ञ है ।[१] तत्त्वसंग्रहकार सर्वपद से 'भावाभावरूपं जगत्' अर्थ ग्रहण करते हैं और कहते हैं कि जो संक्षेप से इस भावाभाव रूप जगत् को जानता है, वही सर्वज्ञ है ।[२] वह यह भी मानते हैं कि जिसने जिस दर्शन में जितने-जितने पदार्थ बतलाए गए हैं उन-उन को सर्व मान कर सामान्यरूप से उन्हें जाननेवाला भी सर्वज्ञ है ।[३]

वेद एवं उपनिषदों में सर्वज्ञत्व :

वेदों में सर्वज्ञ पद दृष्टिगोचर नहीं होता किन्तु यहां देवताओं के प्रशंसापरक प्रार्थनामंत्रों में आगत विश्वदेवान्[४], विश्वजित्[५], विश्वविद्वान्[६], सर्ववित्[७], विश्वचक्षु[८], विश्वद्रष्टा[९] आदि शब्दों के अर्थ में ही सर्वज्ञत्व निहित है । 'सर्वज्ञता' इस पद का प्रयोग उपनिषदों में अधिक बार किया गया है । बृहदारण्यकोपनिषद् में तो **'आत्मानं विद्धि'** कह कर सर्वज्ञ को **'आत्मज्ञ'** कहा गया है ।[१०] जबकि जैन एवं बौद्ध ग्रंथों में **तत्त्वज्ञ** को सर्वज्ञ माना गया है ।

न्यायवैशेषिक दर्शन में सर्वज्ञत्व :

न्याय वैशेषिक दर्शन में ईश्वर को ही सर्वज्ञ के रूप में स्वीकार किया गया है । इनके अनुसार ईश्वर ही सम्पूर्ण जगत् का द्रष्टा, बोद्धा और सर्वज्ञाता है[११] । इस प्रकार नित्यज्ञान का आश्रय होने से यही जानना चाहिए कि ईश्वर की सर्वज्ञता अनादि और अनन्त है ।

सांख्य-योगदर्शन में सर्वज्ञत्व :

सांख्यदर्शन निरीश्वरवादी है किन्तु यहां तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कैवल्य (सर्वज्ञत्व) की उपलब्धि स्वीकार की गई है ।[१२] योगदर्शन पुरुषविशेष को ही ईश्वर मानता है और उसमें सर्वज्ञत्व की निरतिशयता स्वीकार करता है ।[१३]

मीमांसा तथा वेदान्त दर्शन में सर्वज्ञत्व :

मीमांसकों का कहना है कि धर्म जैसे अतीन्द्रिय पदार्थों में पुरुष की ज्ञान प्रवृत्ति नहीं कर सकता कारण कि वह रागद्वेषादि दोषों से मुक्त नहीं है । अतःपुरुष का धर्मज्ञ होना असम्भव है । उनका यहां धर्म से अभिप्राय वेद को प्रमाण मानने से है । धर्मज्ञान में वेद ही अन्तिम है क्योंकि वही अतीन्द्रिय धर्म का प्रतिपादक है और वह अपौरुषेय है । इस तरह मीमांसक व्यक्ति में प्रत्यक्षगत धर्मज्ञता का निषेधकर सर्वज्ञत्व का अभाव मानते हैं ।

यहां आचार्य कुमारिल भट्ट सर्वज्ञत्व को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि 'सर्वज्ञत्व' के निषेध से मेरा तात्पर्य 'धर्मज्ञत्व' का निषेध करना मात्र है । यदि कोई व्यक्ति धर्मातिरिक्त जगत् के अन्य समस्त पदार्थों को अवगत करता है तो वह अवगत करे किन्तु धर्म का ज्ञान वेद को छोड़कर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से नहीं किया जा सकता । अनुमान आदि प्रमाणों से धर्मातिरिक्त निखिल पदार्थों को जाननेवाला यदि कोई पुरुष 'सर्वज्ञ' बनता है, तो बेशक

---

१ तत्र यः सर्वशब्दज्ञः सः सर्वज्ञोऽस्तु नामतः । तत्त्वसंग्रह श्लो. ३/३०

२ भावाभाव स्वरूपं वा जगत् सर्वं यदोच्यते ।
तत्संक्षेपेण सर्वज्ञः पुरुषः केन वार्यते ॥ वही, श्लो. ३/३२

३ पदार्था यैश्च यावन्तः सर्वत्वेनावधारिताः
तज्ज्ञत्वेनापि सर्वज्ञः ॥ वही ३/३५

४ दे. ऋग्वेद १/२१/१; सामवेद १/१/३

५ दे. अथर्ववेद १/१३/४; ऋक् १०/९१/३

६ दे. ऋग्वेद ९/४/८५; १०/२२/२

७ दे. अथर्ववेद १७/१/११

८ दे. ऋग्वेद १०/८१/३

९ दे. अथर्ववेद ६/१०७/४

१० वृहदारण्यक ४/५/७

११ आगमाच्च दृष्ट्वा बौद्धा सर्वज्ञाता ईश्वर इति ।
न्यायसूत्र ५/१/२१ पर वात्सायन भाष्य, पृ. ४८१
विशेष - न्यायवैशेषिक ईश्वर भिन्न योगियों में सर्वज्ञान स्वीकार करते हैं किन्तु सभी योगी आत्माओं में नहीं, क्योंकि योगजन्य होने से उनका ज्ञान अनित्य होता है ।
दे. वाराणसी प्रशस्तपादभाष्य पृ. १५८/१५९ तथा न्यायमंजरी भा. पृ. १७५

१२ एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् । अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥ सांख्यसारिका ६४

१३ तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् । योगदर्शन १/२५

ठगई ठट्ठा ठाकुरी, ठोठी ठणठण पाल ।
जयन्तसेन निष्फल यह, खोते अपना काल ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बने, इसमें किसे विरोध हो सकता है ?[1] किसी को नहीं।

दूसरे, मीमांसक आचार्य शबर स्वामी ने लिखा है कि वेदभूत, वर्तमान और भावी तथा सूक्ष्म, व्यवहित और विप्रकृष्ट पदार्थों का ज्ञान करने में समर्थ है[2] किन्तु पुरुष राग, द्वेष और अज्ञान से दूषित होते हैं। अतः आत्मा में पूर्ण ज्ञान और वीतरागत्व का विकास सम्भव नहीं जिससे वह अतीन्द्रियदर्शी और प्रामाणिक बन सके। इस तरह धर्मज्ञ के अभाव से सर्वज्ञत्व का अभाव भी सिद्ध हो जाता है।

तीसरे, कुमारिल भट्ट का भी कहना है कि शब्द में दोषों की उत्पत्ति वक्ता के अधीन है किन्तु शब्द में निर्दोषता दो प्रकार से आती है एक तो गुणवान् वक्ता के होने से और दूसरे वक्ता के अभाव से क्योंकि वक्ता के अभाव में आश्रय के बिना दोष असम्भव है।[3]

इस प्रकार शब्द की प्रामाणिकता का आधार निर्दोषता है और वेद में जो निर्दोषता और प्रामाणिकता है वह उसके अपौरुषेय होने से है। निर्दोषता और ज्ञान का पूर्ण विकास न मानने में कारण यह भी है कि विकास की भी एक सीमा होती है। विकास सीमित ही हो सकता है, असीमित नहीं क्योंकि कोई व्यक्ति आकाश में उछलने के अभ्यास द्वारा १०-२० हाथ ही तो उछल सकता है न कि वह उछलकर एक योजन ऊंचा चला जावेगा/ अतएव मीमांसकों ने इसतरह वेद को त्रिकालदर्शी बतलाकर सर्वज्ञ का अभाव सिद्ध किया है।

---

१ धर्मज्ञत्वनिषेधश्च केवलोऽत्रोपयुज्यते ॥
सर्वमन्यद्विजानंस्तु पुरुषः केन वार्यते ॥ तत्त्वसंग्रह श्लो. ३१२८

२ चोदना हि भूतं भवन्तं भविष्यन्तं सूक्ष्मं यवहितं विप्रकृष्ट- मित्येवं जातीयकमर्थमवगमयितुमलम्
शाबरभाष्य १/१/२

३ शब्दे दोषाद्भस्तावद् वक्त्रधीन इतिस्थितम ।
तद्भावः क्वचित्तावत् गुणवद्वक्तृतत्त्वतः ॥
तद्गणैरपकृष्टनां शब्दे संक्रान्त्यसम्भवात् ।
यद्वा वक्तुरभावेन न स्युर्दोषाः निराश्रयाः ॥ मीमांसा श्लोक-वार्तिक चोदनासूत्र ६२-६३.

डा. धर्मचन्द्र जैन
एम.ए., पी.एच.डी.
(संस्कृत एवं पाली)

आचार्य (साहित्य, जैन दर्शन), साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, अभिधर्म देशना प्रकाशित। 'लघु बौद्ध पारिभाषिक शब्द कोश तथा जैन दर्शन में नयवाद : एक अध्ययन प्रकाश्य। लगभग पचास शोध निबंधोंका अभी तक प्रकाशन। दो ग्रंथों के लिए लेखनरत
सम्प्रति - रीडर, संस्कृत एवं प्राच्य विद्या संस्थान, कुरुक्षेत्र विश्व - विद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा.

वेदान्ती एकमात्र ब्रह्म को सच्चिदानन्दमय, चिदात्मक, व्यापक और सर्वज्ञ मानते हैं। **शांकरभाष्य** में भी बतलाया गया है कि ब्रह्म नित्य, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, नित्यतृप्त, नित्यशुद्ध, नित्यबुद्ध, नित्यमुक्त स्वभावी, विज्ञान स्वरूप एवं आनन्दमय है।[4] इसतरह ब्रह्म के ज्ञानात्मक होने से उसमें अनन्तज्ञान सदैव एवं सर्वत्र बना रहता है। अतएव यहां ब्रह्म ही सर्वज्ञ है।

बौद्धदर्शन में सर्वज्ञत्व :

बौद्धदर्शन में भगवान बुद्ध को ही सर्वज्ञ के रूप में स्वीकार किया गया है। **मिलिन्द प्रश्न** में उनके शिष्यों में उनकी सर्वज्ञता की सिद्धि करते हुए बतलाया गया है कि जैसे चक्रवर्ती राजा स्मरणमात्र से चक्र, रत्न आदि उपस्थित कर सकता है वैसे ही भगवान् बुद्ध जिस किसी बात अथवा तत्त्व को जानना चाहते हैं वे उसे ध्यान करते ही जान लेते हैं।[5]

धर्मकीर्ति के विचार में संसार की समस्त बातों का ज्ञान होने से अथवा कोई वस्तु कितनी पास या दूर है, इसके ज्ञानमात्र से ही सर्वज्ञ नहीं हो जाता। यदि ऐसा न होता तो दूरदर्शी गृद्धोंकी भी उपासना करनी चाहिए[6] परन्तु धर्म से सम्बन्धित सभी आवश्यक बातों के ज्ञान का ही (हमें) विचार करना अभीष्ट है।[7] अतः हेय-उपादेय तत्त्वों का ज्ञाता ही प्रभाव है, सब पदार्थों का ज्ञाता नहीं।[8]

प्रमाणवार्तिक के भाष्यकार प्रज्ञाकर गुप्त ने बुद्ध को सर्वज्ञ सिद्ध करते हुए कहा है कि बुद्ध की तरह अन्य योगी भी सर्वज्ञ हो सकते हैं कारण कि जब आत्मराग से रहित हो जाती है तब उसमें सब पदार्थों को जानने की सामर्थ्य आ ही जाती हैं।[9] शान्तरक्षित ने भी सर्वज्ञत्व की सिद्धि करते हुए कहा है कि सर्वज्ञ के सद्भाव का कोई भी बाधक प्रमाण नहीं है बल्कि उसके साधक प्रमाण ही अधिक मिलते हैं। अतः सर्वज्ञत्वपर विवाद करना व्यर्थ है।[10] इस प्रकार प्रायः सभी दर्शन किसी न किसी रूप में सर्वज्ञत्व को स्वीकार करते हैं।

---

४ दे. ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, सू. ५, पृ.११

५ दे. मिलिन्द प्रश्न (हिन्दी) पृ. १३७

६ दूरं पश्यतु वा मा वा तत्त्वमिष्टं तु पश्यतु ।
प्रमाणं दूरदर्शी चे तद् गृद्ध्रानुपास्महे ॥ प्रमाणवार्तिक १/३५

७ तस्मादनुष्ठेयगतं ज्ञानमस्य विचार्यताम् । वही १/३३

८ हेयोपादेतेय तत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदकः ।
यः प्रमाणमसाविष्ये न तु सर्वस्य वेदकः ॥ वही १/३४

९ ततोऽस्य वीतरागत्वे सर्वार्थज्ञानसंभवः । समाहितस्य सकलं चकास्तीति विनिश्चितम् ॥ सर्वेषांवीतरागाणामेंतत् कस्मान्न विद्यते । रागादिक्षयमात्रं हि ॥ पुनः कालान्तरं तेषां सर्वज्ञ- गुणरागिणाम् । अल्पयत्नेन सर्वज्ञस्य सिद्धिवारिता ॥ प्रमाणवार्तिकालंकार, पृ. ३२१

१० निवृत्तावस्य भावोऽपि दृष्टेस्तेनापि संशया ।
तस्मात् सर्वज्ञसद्भाव बाधकं नास्ति किञ्चन ॥
ततश्च बाधकाभावे साधने सति च स्फुटे ।
कस्माद् विप्रतिपद्यन्ते सर्वज्ञे जड़बुद्धयः ॥ तत्त्वसंग्रह श्लो. ३३.इ.३३०१.

खटपट खार व खिंझना, खोटी बात खुंखार।
जयन्तसेन प्रगति रहे, छोडे पांच खकार ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में सर्वज्ञत्त्व :

जैनदर्शन में सर्वज्ञत्त्व विषयक गहन चिन्तन किया गया है। जैन ग्रंथों का साङ्गोपाङ्ग अध्ययन करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि यहां प्रत्येक जीव अपनी विशुद्ध अवस्था में सर्वज्ञ है। इस दर्शन में चौवीस तीर्थङ्कर तो सर्वज्ञ हुए ही हैं परन्तु स्वयं बौद्ध दार्शनिक **धर्मकीर्ति** ने भी अपनी रचना में 'ऋषभ और वर्धमान की सर्वज्ञता का उल्लेख किया है।[१] इसके अलावा अन्य असंख्य आत्माएं भी चार[२] घातिया कर्मों का प्रहाण कर सर्वज्ञ हुई हैं। भविष्य में भी कर्मनाश करके द्रव्य, क्षेत्र, काल और आज की अपेक्षा कोई भी भव्य जीव सर्वज्ञ बन सकता है।

जैनागमों में सर्वज्ञत्व

जैन आगमग्रंथों में कहा गया है कि सर्वज्ञ त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्यों और उनके समस्त पर्यायों को जानता है **'सइ भगवं उप्पण्णाणाणदरिसी – सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सम्मसमं जाणादि पस्सदि विहरदित्ति।**[३]

कुन्दकुन्दाचार्य सर्वज्ञ का निरूपण करते हुए कहते है कि 'ज्ञानी लोको के समस्त द्रव्यों को जाननेवाला होता है। वह अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्य को भी जानता है और एक साथ अनेक पर्यायीवाले अनन्त पदार्थों को भी जानता है।[४]

आचार्यसमन्तभद्रकी दृष्टि में सर्वज्ञत्व

समन्तभद्राचार्य ने सर्वज्ञ की सिद्धि करते हुए कहा है कि 'सूक्ष्म अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थों को हम जैसे अनुमान से जानते हैं, वैसे ही उन पदार्थो को प्रत्यक्ष से जानने वाला भी कोई व्यक्ति अवश्य होता है जिसने पदार्थों को जाना ही 'नहीं', प्रत्युत उसने उनका साक्षात्कार भी किया है, ऐसा व्यक्ति विशेष ही सर्वज्ञ है।[५]

इस तरह सर्वज्ञत्व के विषय में **अकलंकभट्ट, विद्यानन्द, प्रभाचन्द** और **हेमचन्द्रसूरिने** आचार्य **समन्तभद्र** का ही अनुसरणकिया है। **स्याद्वादमंजरीकार** आचार्य **मल्लिषेण** ने भी **आप्तमीमांसा** की युक्तियों का अनुसरण कर सर्वज्ञ की सिद्धि की है। वे कहते है कि कष, छेद और तापरूप उपाधियों से रहित धर्म को कहने वाला आगम ही प्रमाण है और इस आगम का कर्ता ही **आप्त** कहलाता है।[६] वही सर्वज्ञ है।

वीतरागी सर्वज्ञ

प्राणवध आदि पापस्थानों के त्याग और ध्यान, अध्ययन आदि की विधि को कष कहते हैं। जिन बाह्य क्रियाओ से धर्म में बाधा न आती हो और जिससे निर्मलता की वृद्धि हो वह छेद है। जीवसम्बद्ध दुःख और बन्ध को सहना ताप है।[७] इस प्रकार कषादि से शुद्धधर्म धर्म कहलाता है। जिसमें रागादि सम्पूर्ण दोष क्षय हो गए हैं, वही आप्त है। रागादि किसी जीव में सर्वथा नाश होना भी सम्भव है। जिसप्रकार सूर्य को आच्छादित करनेवाले बादलों में हीनाधिकता पायी जाती है इसलिए कहीं पर बादलों का सर्वथा नाश भी सम्भव है,[८] उसी प्रकार जीवों में भी राग की न्यूनाधिकता देखी जाती है। कहीं पर राग आदि का सर्वथा विनाश भी सम्भव है। जिसमें ये रागादि सम्पूर्ण दोष नष्ट हो गए हैं वही आप्त भगवान सर्वज्ञ है।[९]

यह मानना भी ठीक नहीं है कि रागादि अनादि हैं और इनका सर्वथा नाश असम्भव है क्यों कि जैसे अनादि सवर्ण के मैल का क्षार मिट्टी के पुटपाकादि योग्य साधनों को पाकर नष्ट हो जाता है और बाहरी तथा भीतरी मल से विहीन हुआ अपने शुद्ध सुवर्णरूप में परिणत हो जाता है वैसे ही रागादि अनादि दोष सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप रत्नत्रय के अभ्यासरूप साधना से नष्ट हो जाते है।[१०] तात्पर्य यह कि द्रव्य तथा भावकर्मरूपमल से बद्ध हुआ भव्य जीव सम्यग्दर्शन आदि योगसाधनों के बल पर उस कर्म बन्ध को पूर्णरूप से दूर करके अपने शुद्धात्मरूप में परिणत हो जाता है। अतः किसी पुरुष विशेष में दोषों तथा उनके कारणों की पूर्णतः हानि होना असम्भव नहीं है। जिस पुरुष में दोषों तथा आवरणों की यह निःशेष हानि होती है वह पुरुष आप्त अथवा निर्दोष सर्वज्ञ होता है। निम्नोक्त अनुमान प्रयोग से भी सर्वज्ञ की सिद्धि होती है -

सर्वज्ञत्व की सर्वोत्कृष्टता :

ज्ञान की हानिवृद्धि किसी जीव में सर्वोत्कृष्टरूप में नहीं पायी जाती क्योंकि ये हानि और वृद्धि रूप है। तथा जिस प्रकार

---

१ यः सर्वज्ञ आप्तो वा स ज्योतिर्ज्ञानादिकमुपदिष्टवान् तद् यथा ऋषभवर्धमानादिरिति। न्यायबिंदु ३/१३१

२ ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय ये चार कर्म घातिया कहलाते है।

३ दे. षट्खण्डागम पयडि. सूत्र ७८ तथा मिलाइये - 'से भगवं अरहं जिनकेवलीसव्वन्नू सव्वभावदरिसी - सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावाइं जाळमाणे पासमाणे एवं च णं विहरइ। आचारांग सूत्र २/३

४ जं तक्कालियमिदरं जाणादि जुगवं समंतदो सव्वं।
आथं विचित्तविसमं तं पाणं खाइयं भणियं॥
तिक्कालणिच्चविसमं सयलं सव्वत्थसंभवं चित्तं।
जुगवं जाणादि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं॥ प्रवचनसार १/४७,५१

५ सूक्ष्मांन्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थिति॥ आप्तमीमांसा कारिका ५

६ यस्त्वाप्तप्रणीत आगमः स प्रमाणमेव, कषच्छेदताप-लक्षणोपाधित्रयविशुद्धत्वात्। स्याद्वादमंजरी, पृष्ठ १७५

७ वही, पृ. २६८

८ देशतो नाशिनो भावा दृष्टा निखिलनश्वराः।
मेघपङक्त्यादयो यद्वत् एवं रागादयोमताः॥ वही, पृ. १७६.

९ यस्यच निरवयवर्तयते (रागादयः)
विलीना, स एवाप्तो भगवान् सर्वज्ञः
वही तथा तुलना कीजिए–
दोषाऽऽवरणयोर्हानिर्निःशेषाऽस्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः॥ आप्तमीमांसा कारिका ५

१० अनादेरपि सुवर्णमलस्य क्षारमृत्पुटपाकादिना विलयोपलम्भात्। स्याद्वादमंजरी, पृ. १७६.

दानी दीन सखा भुदा, दम दाक्षिण्य दयाल।
जयन्तसेन सुदूर हो, इन से सब जंजाल॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org